धन्यवाद !

प्रिय पाठक वृन्दों !

मैं आज श्री भगवान शंकरजीका, शिवमहिम्न स्तोत्र, आप लोगोंकी सेवामें भेंट करता हुआ जितना हर्षित होता हूं, उतनाहीं हर्ष "श्रीमान् वैश्य वंशावतंश माहेश्वरी कुल तिलक धर्म प्राण बावू श्रीशिवनारायणजी मीमाणी,तथा उनके प्रिय पुत्र उदीयमान् युवक धर्मस्तम्भ' श्रीमान् बावू गणेशदासजी मीमाणीको धन्यवाद देने में होता है। आप शिवनारायण रामनारायण एण्ड कम्पनी नं० ३, बड़तल्ला ष्ट्रीट, के फार्मके मालिक हैं। आपका फार्म कलकत्तेमें सर्व श्रेष्ठ घी का व्यवशायी है आपका "शंकर मार्का घृत" पवित्रता एवं रोचकतामें सर्व श्रेष्ठ प्रमाणित हुआ है। आपका व्यवशाय, और कई विभागोमें बटा हुआ है। वस्तुत: वर्तमान समयमें लक्षाधिपतिके अलावा कई मकानोंके मालिक आप एक उच्च श्रेणी के जमींदार होते हुए भी जितना धर्ममें निष्ठा, देश भक्ति, एवं जातियता में श्रद्धा रखते हैं। यह उनका चरित्र भारतीय धनवान नवयुवकोंके लिए महान आदर्श कहा जा शकता है। यद्यपि वह अपने इस कर्तव्यसे अपनेको प्रशंशा का पात्र नहीं समझते, फिर भी मैं दावेके साथ कहूंगा कि इस भारत जननी के अकष्मल गोदसे यदि उनके ही तरह हृदय रखने वाले दयावान एवं कालज्ञ पुरुषोंका आविर्भाव हो तो (भारत के गरीव दुखियोंको दुर्दशा, एवं बूढ़े सनातन धर्म की मर्य्यादाकी रक्षा) ये दोनों समस्यायें अवश्य हल हो सकेंगी। अस्तु, श्रीमान् बावू गणेशदासजी के धार्मिक उत्साह से ही यह शिव महिम्न स्तोत्र प्रकाशित हुआ है। अत: मैं कृतज्ञता प्रकट करता हुआ उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

शुभाशीर्वाद ।

सोयं प्रियं शिवनरायणजं गणेशं,
माहेश्वरीकुल दिवाकर शंकरप्रियम् ।
आशीर्वदत्यधिश्रियायु कलत्रपुत्रवान्
ह्येनंकरोतुभगवानभुवि भूतनाथः ॥

आरा,ह्वये मण्डल मञ्जु देशे,
नौआन, पत्रालय मध्य भूमौ ।
विराजतीसा 'रोहिआ' प्रियापुरी,
कैलास मानस मरालिनि जन्मभूमिः ॥

रचयिता —
पं० कैलासपति शर्म्मा 'चतुर्वेदी'
ता० ८-७-३८ कलकत्ता ।

ॐ नमः शिवाय

शिवमहिम्नस्तोत्रम्

महिम्नः पारन्ते परम विदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादिनामपि तदव सन्नास्त्वयिगिरः ।
अथावाच्यःसर्वःस्वमति परिणामावधिगृणन्,
ममाप्येषस्तोत्रे हरनिरपवादः परिकरः॥१॥

इसीसे संज्ञा है हर, हरत शोकाब्धि जगकी,
नकि ब्रह्माने भी गुण कथन वाणी कहथकी ।
तथापि ब्रह्माया, हमभी न हुए निन्द्य सुविभो,
यतः तेरी सीमा नहिंत कह कैसे कथन हो ॥१॥

हे हर! सब संसार के दुखोंको हरण करते हैं इसीसे हर सम्बोधन दिया गया है। और वह सम्बोधन आपके योग्य है। हे सर्व दुःखहर! आपकी अपार महिमाको न जानकर की

गयी स्तुति सर्वथा अयोग्य है। तथापि ब्रह्मा आदिकोंने आपकी स्तुति की। यद्यपि स्तुति करते २ उनकी वाणी थक गयी और वह आपके सम्पूर्ण गुणों का वर्णन नहीं कर सके और मेरी तो गिणना हीं क्या है, फिर भी ब्रह्मा या तुच्छ बुद्धिका मैं आपकी पूर्ण स्तुतिको न जानकर निन्द्य नहीं हुए है। क्योंकि जब आपके गुणों की सिमाही नहीं तो वर्णन कौन कर सकता है? कोई नहीं।

अतीतः पन्थानं तवच महिमा वाङ्मनसयो,
रतद्व्यावृत्यायंचकित मभिधत्ते श्रुतिरपि।
सकस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्यविषय,
पदेत्ववर्वाचीनेपतति न मनःकस्यनवचः ॥२॥

असीमा ये तेरी' रहित सब धर्मों की महिमा,
अतद् व्यावृत्या ये' कहति श्रुति वाणी मनहुंते।
स्तुती को जानेगा' गुण कथन किसका विषय है,
बुधों की तौ भी गिर' झुकति अर्वाचीनपदपै ॥२॥

हे हर अनन्त होनेके कारण सगुण निर्गुणादिस व धर्मोंसे रहित अर्थात् पारंगत यह तुम्हारी महिमा मन और वाणी से भी नहीं जानी जासकती ऐसा "अतद्व्यावृत्या" अर्थात् अभेदसे सम्पूर्ण जगतको ब्रह्ममय बतलाने वाली श्रुति भी चकित हो होकर बतलाती हैं। ऐसी महिमा वाले आपकी स्तुति को कौन जान सकता है और कौन आपके गुणों का वर्णन कर सकता है। परन्तु

हे नाथ! ऐसा जानकर भी विद्वानों की वाणी आपके अनन्त एवं अकथनीय पद पर ही पहुंचनेके कोशिश में लगी रहती है। सचही है ऐसी जनहित कारिणी महिमा जाननेके लिए किसका मन उत्सुक न होगा।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत,
स्तवब्रह्मन किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
ममत्वेतां वाणीं गुणकथन पुण्येन भवतः,
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता॥३॥

मधूसेमीठी ये अमृत मय वाणी विधि हुं को,
किया विस्मयभारी, कह कित मुझोंसीकी गणना।
अहो ब्रह्मन् वाणी निज विमल होगी स्तवनसे,
अतः बुद्धि मेरी करति तव स्तुत्यर्थ रचना॥३॥

हे ब्रह्मन! सर्व शक्तिमान! सुर गुरू ब्रह्माकी अमृतसी सुस्वादु और मधु से भी मीठी वाणी आपके गुण कथनमें हार मान कर स्वयं ब्रम्हा को चकित एवं विस्मित कर रहीं हैं। हे प्रभु! जब विधाता ही विस्मयके वशी आपकी महिमा से हो रहे हैं तो हमारे जैसोंकी गणना हीं क्या है। परन्तु हे शङ्कर! आपके गुणों की चर्चा से हमारी वाणी पवित्र होगी इसी आशा से किञ्चित स्तुति आरम्भ किया है।

तवैश्वर्य्यं यत्तज्जग दुदय रक्षा प्रलय कृत् ।
त्रयी वस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु
अभ व्यानामस्मिन्वरद रमणीया मर मणीम्
विहन्तुं व्याक्रोशी विधतइहै के जडधियः॥४॥

विभूती तेरी है' जगत जनि रक्षा प्रलयकी ।
वटी तीनों मेंहै' हरविधि रमानाथ गुणसे,
अभद्रोंके जी में' रमण करती जो अरमणी ।
वही बुद्धी करती' तब गुणन कुत्सा कुप्रणसे॥४॥

हे वरद ! वरकेदेनेवाले ! आपके ऐश्वर्य्य, संसार की सृष्टी, स्थिति, और विनास, येतीनों रजोगुण तमोगुण सतोगुण रूपसे हर, आपमें विधि ब्रह्मामें रमानाथ भगवान विष्णु में बटा हुआ है। कुछअभद्रों के हृदय में (नहीं रमण के लायक) जो जड बुद्धी रमण करती है । वही जड बुद्धी (मीमांसकोंकी) आपके गुणोंकी प्रणरोप कर कुत्सा (निन्दा) करती है ।

किमीहः किंकायः सखलु किमुपायस्त्रिभुवनम्
किमाधारोधाता सृजति किमुपादान इतिच ।
अतर्क्यैश्वर्य्ये त्व य्यनव सर दुःस्थो हतधियः
कुतर्कोयंकांश्चिन्मुखरयतिमोहायजगतः॥५॥

उपादानों काही नहीं' समझते कारण कथा,
न आधारोंको या' वपु त्रिधि सृजन् चेष्टाहि समझें ।
अतर्क्यां भूतिमें' जगत जनमोहार्थ-कपटी,
कुतर्की वाचाली' घटसि रचना तर्क विरचै॥५॥

हे भगवन्! आपकेही ऐश्वर्य्य से परम पिता विधाता संसार की रचना करते हैं। हे प्रभो! इस विषयमें जो लोग शंका करते हैं कि, किस तरह रचना होती है, और किस आधार पर और किस उपादान से आदि२ उनकी शङ्का निर्मूल है और वेहीलोग कुतर्की कहलाते हैं और कपट रूप धारण कर भोले जनोंको ठगने के लिये वाचाल बनारहे हैं (कितने ही लोग आपके ऐश्वर्य्य को न समझ कर कुम्हार के घडे की तरह संसार की सृष्टि की कल्पना करते हैं वे मिमांसक) निरा अपनी भूल पर हैं।

अजन्मानोलोकाः किमवयववन्तोऽपिजगता,
मधिष्ठातारंकिं भवबिधिरनादृत्य भवति ।
अनीशोवाकुर्याद् भुवन जननेकः परिकरो,
यतो मन्दस्त्वां प्रत्यमरवर शंशेरत इमे ॥६॥

अवश्यइ जन्मा ये, शकल जग सर्वाङ्ग रचना,
अधिष्ठाता तेरी, विधि तज किसीसे बनशके ।

शिवातेरे शम्भो, यदि कोइ करे तो विधि कहां,
नहींतो, को तुमको नहीं कह सके मन्द मनके॥६॥

हे अमर वर! क्या अवयवों के साथ यह पृथिव्यादि लोक जन्म रहित हैं कथमपि नहीं ? क्या आपके शिवा और कहीं इस संसार की रचना के लिये विधि प्राप्त हो सकती हैं। कहीं भी नहीं। क्या सर्व सम्पति शाली आपके विना कोई अनीश अर्थात् ऐश्वर्यहीन पुरुष भी इसकी रचना कर सकता है। कोई नहीं। यह संसार आपके बिना दूसरेसे रचा जाने वाला नहीं है। और यह जगत अवश्य ही जन्म धारी है। यदि कोई कल्पना भी करे तो उसके पास विधि नहीं है। अतः आपके ऐश्वर्य के विषयमें शङ्का करने वाले मूढ़ हैं।

त्रयी सांख्यं योगःपशुपतीमतं वैष्णव मिति,
प्रभीन्ने प्रस्थाने परमिद मदः पथ्य मितिच।
रुचीनां वैचीत्र्या दृजुकुटीलनाना पथजुवां
नृणानेको गम्यस्त्वमसि पयसा मर्णवइव॥७॥

प्रभोतीनों वेदों, पशुपति तथा विष्णु मतके,
सभी शास्त्रों योगों श्रुतिस्मृतितथासांख्यमगमें।
चले सीधा टेढ़ा निज रुचि विचित्राप्रगति से,
उन्हें मिलते आखिर तुम जजु नदी सिन्धुजगमें॥७॥

हे अमरवर ! हे प्रभो, तीनों ऋग् यजु, साम, वेदों तथा शैव मत, या विष्णु मत, या सांख्य, योग आदि ससारमें संसारियोंको मार्ग रूपक, आदि कल्पना या अनादि तर्क विद्यमान हैं। उनपर अपनी रुचिकी विचित्रता से सीधा या टेढ़ा चलने वाले हर पथिकों को सागरमें सीधी टेढ़ी चलने वाली नदियाँ की तरह आखिर में तुम्हीं मिलते हो।

महोक्षः खट्वांग परशुरजिनं भस्म फणिनः,
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोप करणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिंदधतितुभवद्भ्रू प्रणिहितां,
नहिस्वात्मारामंविषयमृगतृष्णांभ्रमयति॥८॥

चढ़े बूढ़े बैला, परसु अहिखट्वाङ्गन लिए,
लपेटे सिंह त्वक्, नरसिर सुतान्त्रीक भसमी ।
भलाभ्रु फेरे ते, धरत सुर सम्पति विपुला,
उसी आत्मानन्दी, ढिंग विषय तृष्णा न विरमी॥८॥

हे वरद ! वरको देनेवाले शिवजी। भला यह कैसी बात है कि आपके नैन के इसारेसे देवता लोग विपुल सम्पति को धारण किये हुए हैं और आप इतना समर्थी होते हुए भी निर्धन की तरह एक बूढ़ा बैल, खटियेका पावा, परशु, गजचर्म, भस्म, सर्प कपाल, लिए

घूमा करते हैं। अहो, नाथ यह तो तुम्हारे संसारके कल्याणके निमित्त कुटुम्ब धारण के लक्षण बतलाते हैं। अवश्य ही जगत मंगल मूर्ति कल्याणमय परब्रह्म परमात्मा घन सच्चिदानन्द, आत्मज्ञानी सकार शिव के निकट विषयादि मृगतृष्णायें नहीं फटकतीं।

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदम्,
परोध्रौव्याध्रौव्येजगति गदति व्यस्तविषये।
समस्ते प्येनस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव,
स्तुवञ्जिह्मेमित्वांनखलुननुधृष्टा मुखरता ॥६॥

कोई कहता सत है कोई असत कहता जगत को,
कोई सत असत के विकट उलझनमें विकल है।
स्तवनमें उनके से पुरमथन मैं व्यस्तन हुआ,
किया लज्जा तज मैं यह भी एक बागधृष्टवल है ॥६॥

हे भगवन्! इस सम्पूर्ण जगतको कोई सत कहता है और कोई असत् कहता हैं। कितने सत असत जाननेके लिए अनेक प्रकार की कोशिशें किया करते है पर इसका निर्णय नहीं कर पाते। हे पुरमथन! उन व्यस्त बुद्धि वालोंकी तरह मैं विस्मित एवं शशंकित न होकर भी आपमें सर्व शक्तिमत्ताका विश्राम देखकर सिर्फ उनके अनेक मतोंके सम्बन्धमें हीं मैं चकित और उनके सामने लज्जितसा होता हूं। फिरभी यह कहना आपके सामने हमारी ढिठाई और बाचालताही है।

तवैश्वर्य्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चो हरिरधः,
परिच्छेतुं जाता वनल मनलस्कन्ध वपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धा भरगुरुगृणद्भ्यां गिरिशयत्,
स्वयंतस्थेताभ्यांतवकिमनुवृत्तिर्नफलति॥१०॥

त्रिभूती नापनको उपर विधि नीचे हरि चले,
गये जा सकते थे जहं लगिन सीमा तव मिली ।
स्वयं भक्ती श्रद्धा युत थित विनय दोनहुं किये,
हुई वाञ्छा सिद्धि कह कितन सेवा तव फली ॥१०॥

हे भगवन्! आपका ऐश्वर्यठहराने के लिये ऊपर को ब्रह्मा और नीचेको विष्णु भगवान चले। जहां तक जा सकते थे गये परन्तु आपके गुणों की सीमा नहीं मिली तब आप ने उसे स्वयं धारण किया। और वे दोनों भक्ती और श्रद्धासे आपकी विनय किये! तब आपने उनको अपना दर्शन दिया। तो हे प्रभो आपकी सेवा क्या नहीं फली, किन्तु नहीं अवश्य फली। गन्धर्वराजके कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जिस नित्यसत्य पर ब्रह्म परमात्मा घन सच्चिदानन्द की अनुह्य महिमा का अन्त ब्रह्मा विष्णु नहीं जान सके वह स्वयं उनकी श्रद्धा पर प्रशन्न होकर उनके मनोर्थ को फली भूत करते हैं। अत: उनकी सेवा फलवती है।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैर व्यतिकरं,
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डू परवशान ।

शिरः पद्म श्रेणीरचित चरणाम्भोरुहबले,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरविस्फूर्जितमिदम् ११

जरा यत्नोंसे कर त्रिभुवन बिना बैरि अपना,
दशाननके बाहू रण खुजलियों के विवश थे।
किया शिर पद्मोंसे तव चरण पूजाहर विभो,
तुम्हारी भक्तीके स्थिर कृत सबी ये शुयशथे॥ ११

हे त्रिपुर हर! थोड़ी उपायों से ही रावणने तीनों लोकों को अपना बैरी के बिना बना लिया था। जिस रावण की बीस भुजायें रण कण्डू अर्थात् संग्राममें लड़नेके लिये बराबर खुजलाया करतीं थीं। वही रावण आपकी चरणों की भक्ति के जोस में आकर अपने मस्तकों को काट कर माला बना आपके चरणोंमें हर्षके साथ चढ़ा दिया। और पुनः उसका शिर आपने बडी प्रसन्नताके साथ उत्पन्न कर दिया। इस लिए तपस्या और भक्ति पक्षमें रावण धन्यवाद का पात्र कहा जा शकता है। यह तुम्हारी भक्तिका एक अंश मात्र फल था तो पूर्ण फल आपकी भक्तिका किस रूपमें होगा इसे कौन कह सकता है।

अमुष्य त्वत्सेवासमधि गतसारं भुजबनम्,
बलात्कैलासेपि त्वदधि बसतौ बिक्रमयतः।

अलभ्या पातालेप्यलसचलितांगुष्ठसिरसि,
प्रतिष्ठात्वय्यासिद्ध्रुव मुपचितोमुह्यतिखलः १२

तिहारी सेवासे दशमुख भुजोंमें बल लिया,
बलात्कैलासइपै निजभुज परीक्षा स्थितकिया।
अंगुठेका धक्का लगत वह पाताल गिरके,
हंसी निज करवाया तब कृत कृतघ्नी चिसरके ॥१२॥

हे त्रिपुर हर! आपकी ही परम सेवासे रावणके बाहुओं में सबको जीत लेनेका बल हुआ। वह कृतघ्नी रावण आपके ही निवास स्थान कैलास पर्वतको उठाकर लङ्कामें लेजाने की चेष्टा की। और वह पातालमें जाके पर्वत को उठाने लगा तो उसके कम्पनसे पार्वतीजी भयभीत हो आपकी तरफ देखने लगी। तब आपने अपने अंगूठे के बलसे उस पर्वत को दबाया और उस भारको न सहकर रावण पाताल तलमें जा गिरा। तब वहां के वासिन्दे उसकी हंसी उड़ाये। सच है कि मूर्ख लोग बल पाकर अत्यन्त उन्मत्त हो जाते हैं।

यद्दृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती,
मधश्चक्रे वाणः परिजन विधेयस्त्रिभुवनः।
नतच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरीत्वच्चरणयो,
र्नकस्याप्युन्नत्यै भवतिशिरसस्त्वय्यवनतिः १३

सुरेसउकी ऋद्धि त्रिभुवन अधीनस्थ जिसके,
दिखाया नीचाथा बलिसुत तेरी भक्ति बलसे।
तिहारी भक्ति के परम फलका अंश यह था,
प्रभो सेवा तेरी सुखन सह हैमोक्ष फलसे॥१३॥

हे शिव ! धनराज सुरेशकी भी सम्पतिको वलि सुत (बाणासुर) ने नीचा दिखाया था वह तुम्हारी ही भक्तिका अंश मात्र था। त्रिभुवन को आपकी ही कृपाके बलसे उसने अपने बसमें किया था। आपके चरणोंमें रत रहने वालोंके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है। क्योंकि यह सत्य है कि आपकी स्तुति करनेवाले बड़ी से बड़ी शक्ति को भी नीचा दिखला सकते हैं।

अकाण्ड ब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुर कृपा,
विधेयस्यासीद्यः स्त्रीनयन बिषं संहृतवतः।
सकलमाषः कन्ठेतवन कुरुतेनश्रिय महो,
बिकारोऽपीश्लाध्योभुवनभयभंगव्यसनीनः।१४

जगत छयके भयते, चकित चित देवासुर हुए,
जहर पी रक्षाकी, गल निलिम शोभायुत हुए।
अहो श्रीमन् तेरे, निकट विष भी श्लाध्यबनके,
भुवनभयभंगोंका, त्रिषय तव कण्ठ स्तवनके॥१४॥

हे त्रिनयन ! जहर को उत्पन्न हुआ देखकर देवता असुर आदि सभी भयके विवश होगये की अब तो संसार का विनास होना चाहता है। तब आपने लोगों पर बड़ी कृपा करके विष को पान कर गये और उसे गले में ही रोक लिए। इसी कारण नीला कण्ठ होनेसे आप नीलकण्ठ कहे जाते है। क्या वह कण्ठ आपका श्लाघनीय नहीं हुआ। किन्तु नहीं अवश्य हुआ। क्योंकि त्रिभुवनके भङ्ग (नास) के भयको मिटानेका विषय तुम्हारा यह कण्ठ स्तवन ही हुआ है।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुर नरे
निवर्तन्तेनित्यंजगतिजयिनोयस्यविशिखाः।
सपश्यन्नीश त्वामितर सुरसाधारण मभूत्,
स्मरःस्मर्तब्यात्मानहिंबशिषुपथ्यःपरीभवः॥१५॥

नचुकते हैं बाणा सुर नरहुं पै पुष्प शरके,
जगन्नाथ स्वामी सकल सुर सम जान तुमको।
जितेन्द्री जनकोवो नहिं समझ छोड़ा तुमहिंपर,
किये स्मर्तव्यात्मा तुम उसघड़ी शर कुसुमको॥१५॥

हे ईश ! त्रिलोक पर विजयका सत्ताधिकारी जिसके सुमन वाण देव दानव मनुष्यादि किसी पर किसी समय भी व्यर्थ नहीं होते ऐसा विजयी मन्मथने आपके ब्रह्मचर्य्य की पराकाष्ठासे अविदित आपकोही अपना लक्ष्य बनाना चाहा। वह ये नहीं सोचा

कि जितेन्द्रियोंको मैं बसमें नहीं कर सकता। आखिर विचारा काम, आपके क्रोधानलमें दग्ध हो स्मरणीय आत्मास्थान (पितृलोक) को प्राप्त कर लिया। क्या आपकी कृपासे आपके भक्त जितेन्द्रिय नहीं हो सकते, किन्तु नहीं अवश्य हो सकते हैं।

महीपादाघाताद्‌ व्रजति सहसा संसयपदम्,
पदम्विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यंजात्यनिभृत जटा ताड़ित तटा,
जगद्रक्षायै त्वंनटसिननुवामैवविभुता॥१६॥

चरणके धक्कोंसे महि डरति वाहू भ्रमणते,
वसे विष्णू पदके भयगत सुतारा सुरनगर।
जटासे ताड़ित है विकल यह तव बामविभुता,
नटन्तुद्भट यहते त्रिकट विघटन सिंधुतटपै॥१६॥

हे भगवन्! जब संसार के कल्याणार्थ आप ताण्डव (नृत्य) करते हैं तो आपके चरण के धक्के से पृथ्वी भय को प्राप्त हो जाती है। आपके ऊपरको उठे हुये मुग्दर के तरह भुजाओं से तारागणों के साथ आकाशमण्डल घूमता हुआ दुःखी हो जाता है। सुरनगर (स्वर्ग) का तट (प्रान्त) जटाके आघातासे व्यग्र हो उठता है। संसार सागर के तट पर यह आपका प्रकाण्ड ताण्डव आपकी विभुता का द्योतक है।

बियद्‌व्यापीताशगणगुणितफेनोद्‌गमरुचिः,
प्रवाहोवाशंयः पृषत लघु दृष्टः शिरसिते।
जगद्द्विपाकारं जलधि बलयं तेन कृतमिति,
अननैवोन्नेयंधृतमहिम दिव्यंतववपुः॥१७॥

गगनमें तारोंकी रुचि गुणित ज्वाला सलिलकी,
वही शिर पै तेरे ललित जललव लोचनमिले।
बिभाता है मानों जलधि बलयोद्वीप जगमें,
इसीसे मान्या है अमित महिमा वेद मगमें॥१७॥

हे भगवन्! ताराओं से गिने हुए फेन उठनेकी शोभा को धारण किये हुई जलकी ज्वाला आपके मस्तक पर लघु विन्दुओंकी तरह मालूम पड़ती हैं। और उससे सम्पूर्ण जगत् मेखलित है जैसे कि समुद्रसे घिरा हुआ द्वीप हो। अतः जानना चाहिये कि अमित महिमा को धारण करने वाला आपका शरीर दिव्य (उत्तम) है।

रथःक्षोणीयन्ता शत धृति रगेन्द्रो धनु रथो,
रथाङ्गे चन्द्रार्कौरथचरण पाणिःशर इति।
दिधक्षोस्तेकोयं त्रिपुर तृणमाडम्बर विधिः,
विधेयैक्रीडन्त्योनखलुपरतन्त्राप्रभुधियः॥१८॥

ये कैसा आडम्बर लघु त्रिपुर नासार्थ करली,
सुत ब्रह्मामेरु धनुष रथ पृथ्वी शर हरी।
बनाये हैं शम्भू रवि शशि भले चक्र रथके,
स्वतन्त्रा क्रीड़ा ये सच परम आनन्द पथके॥१८॥

हे महादेवजी! छोटासा तृण के समान त्रिपुरा सुरके विनासार्थ पृथ्वी को रथ ब्रह्मा को सारथी पर्वत राज सुमेरुका धनुष सूर्य, चन्द्र को रथ के चक्र तथा चक्रपाणी विष्णु को आपने विषधर वाण बनाया। हे प्रभो! यह आपका खेल (क्रीड़ा) नहीं तो और क्या कहा जा सकता है। सच है भक्तों के साथ क्रीड़ा करती हुई प्रभुओंकी बुद्धि निश्चय करके पराधीन नहीं होती।

हरिस्ते साहस्रं कमलवलि माधाय पदयो,
र्यदेकोनेतस्मिन्निज मुद हरन्नेत्र कमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणति मसौ चक्रवपुषा,
त्रयाणांरक्षायै त्रिपुरहरजागर्ति जगताम्॥१९॥

सहस्र पद्मा पद्मा पतिपद पदम पूजन तेरे,
गये ले, लीलाकी कमल एक तु लुप्त करके।
परिक्षा ली, करदी निज नयन न्योछावर हरी,
भरी झोली वर पा जगपति हुए चक्रधरके॥१९॥

हे त्रिपुर हर! विष्णू भगवान हजार कमल फूलोंसे आपके चरणोंकी पूजा करने गये। आपने उनकी भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिये एक फूल लुप्त कर दिया। वह भी आपकी भक्तिको अपना जीवन धन समझ अपना नेत्र स्वरूप कमलको निकाल कर आपके चरणोंमें अर्पण कर दिये। आप प्रशन्न होकर उन्हें आंखोंके साथ वर दिये। जिस वरदान के वलसे चक्रधारी विष्णु भगवान जगत की पालनात्मक शक्ति को धारण किए हुए हैं।
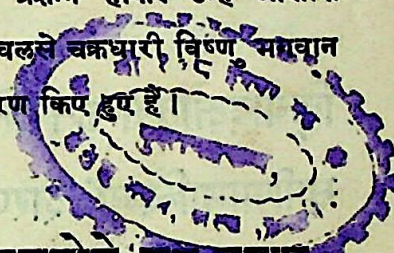
क्रतौसुप्ते जाग्रत्त्वमसिफलयोगे क्रतुमताम्,
क्वकर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधानमृते।
अतस्त्वांसम्प्रेक्ष्यक्रतुषुफलदानप्रति भुवम्,
श्रुतौश्रद्धां वद्ध्वादृढपरिकरःकर्मसुजनः॥२०॥

विनासी यज्ञोंके फलन बिन चैतन्य फलते,
तुम्हीं औ वेदों पै फलरख सभी यज्ञ चलते।
समाप्त्यन्तर सबको करमबस फलदान करते,
इसीसे विस्वासी प्रभुतव वरद नाम धरते॥२०॥

हे त्रिपुर हर! बिनासी यज्ञोंके सुप्त, अर्थात् अदर्शन (क्रिया रहित) हो जाने पर बिना जाग्रत (अर्थात् चैतन्य) के फल कोई नहीं दे शकता। अतः उन कर्मों का फल देनेके लिये आप सदा जाग्रत रहते हैं। क्रिया समाप्ति के अवसर सबको कर्मानुसार फल देते हैं। इसीसे विश्वासी पुरुष आप के ही ऊपर कर्मफल निर्भर रखके कार्य्यारम्भ करते हैं।

क्रियांदक्षोदक्षःक्रतुपतिरधिश स्त्वनु भृता
मृषीणामार्त्विज्यं शरणदसदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंसस्त्वत्तः क्रतुफलबिधान व्यसनिनः,
ध्रुवंकर्तुःश्रद्धाविधुरमभिचारायहिमरवाः॥२१॥

क्रिया ज्ञाता होता दनुज पति यज्ञाधिप हुए,
निरिक्षक थे देवा अपिन तव सेवा वंह किए।
समर्थी संरक्षक तौहुं तुम विध्वंस करदी,
अहंकारी यज्ञें विफल हैं ये व्यक्त करदी॥२१॥

हे शरण के दाता! क्रियाके जानने वाले वेद पाठी होता, दानवों के राजा साक्षात् बलि यज्ञाधिप, जहां देव वृन्द संरक्षक ऐसे यज्ञको

आपने विध्वंस कर दिया। किसीका रोका नहीं रुक सका। वहां आपके लिये स्थान नहीं दिया गया था। सिर्फ यही कारण नहीं था। बल्कि अहंकारसे की गयी क्रियाओंका कुछ भी फल नहीं होता यह आपने स्पष्ट कर दिया।

प्रजानाथंनाथ प्रसभमभिकं स्वांदुहितरम्,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु मृष्यस्यवपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्रा कृत ममुम्,
त्रसन्तंतेऽद्याऽपि त्यजतिनमृगव्याधरभसः२२

हुई धाता पुत्री अतिशय ह्रिया हेतु हरिणी,
विषयकी इच्छासे विधि वपु मृगा रूप वरणी।
भगे ब्रह्मा देखे करशरलिए केहरि बदन,
तुमारा अवलौं है विधिवधत्रसाखेट विरचन॥२२॥

हे नाथ! रमणकी इच्छा करनेसे धर्म भ्रष्ट होते जानकर ब्रह्माकी पुत्री (शतरूपा) मृगी का रूप धारण कर लिया। तो भी विषयके अज्ञानमें पड़कर ब्रह्मा मृगा रूप धारण कर अपनी पुत्रीसे विषय करना चाहे। तब आपको शिकारी सिंह स्वरूप हाथमें धनुष बाण लिये देख, स्वर्ग लोकको भागे। और आपका बाणने पीछा किया

वह नक्षत्रोंके मध्यमें मृग शिरा रूप जाकर बैठ गये। तब आपका बाण आर्द्रा रूप धारण करके उनके सिरपर बैठ गया। आज तक भी वह आपकी महिमाका चमत्कार दिखा रहा है।

स्वलावण्या शंशाधृत धनुष मह्णाय तृणवत्,
पुरःप्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुध मपि।
यदि स्त्रैणंदेवी यमनिरत देहार्ध घटना,
दवैतित्वामद्धा वतवरदमुग्धा युवतयः ॥२३॥

मदनको जारा है तुम तबहुं बश जानति उमा,
विषय चिन्ताका है, तदपि उस सौन्दर्य प्रतिमा।
वदनके, आधेमें मदन करि आधा तुम दिए,
इसीसे होती हैं युवति जन भोली बश हिए॥२३॥

हे संयम मे निरत पुर मथन! हाथमें धनुष धारण किये हुये पुष्पायुध (काम) को आपने जला दिया। पार्वतीजीको सान्त्वना देते हुये आपने अपने शरीरका अर्ध भाग काम स्वरूप अर्पण कर दिया। इसीसे पार्वतीजी यह समझतीं हैं कि शिवजी मुझमें ही आसक्त हैं। क्योंकि पार्वतीजी सर्वगुण सुन्दरी अपनेको समझतीं हैं, तो यह समझना स्त्री स्वभावके अनुसार उपयुक्त ही है। परन्तु स्त्रियाँ तो मुग्धा अर्थात् भोली होती हीं हैं।

स्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमंगल्यंशीलं तवभवति नामैवमखिलं,
तथापिस्मर्तॄणां वरदपरमं मंगलमसि॥२४॥

स्मशानोंमें क्रीड़ा सहचर पिशाचादि संगमें,
गले मुण्डीमाला चमकति चिता भस्म अंगमें ।
अमंगल हो कर भी निज जननके मंगल करैं,
अहो बरदानीतु लखत तोहिं आपत्ति बिसरैं॥२४॥

हे वर के दाता महादेवजी ! आप मुण्डमाल धारण कर स्मशानों में क्रीड़ा करनेसे तथा चिता भस्म लेपन से अमंगलस्वरूप होकर भी भक्तों का मङ्गल करते हैं। यह आपकी महानता का असली परिचय है। आप के इस स्वरूप का ध्यान करनेसे आप त्तियां अवश्य दूर होती हैं।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्त मरूतः,
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमद सलिलोत्संगितदृशः ।
यदालोक्या ह्लादं हृदइव निमज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्वंकिमपियमिनस्तत्किलभवान॥२५

यती योगी मनमें पुलकहीं लखे सार इकभी,
भरें जलते नैना हृदय सरमें मानहु अमी।
लगाते हैं गोता अनंद घन पाते अवशिहीं,
अहो उन योगिनके विमल मनके तत्व तुमहीं॥२५॥

हे भगवन्! प्राणायामादि करनेवाले, विषयोंसे निवृत चित्त वृति के निरोध करनेवाले, योगी जन जिस तत्वका दर्शनको पा चकित हो उठते हैं। मानों वह हृदयरूपी तालाबके भरे हुए अमृतमें गोता लगाकर आनन्द पाते हैं! वह आनन्ददायक तत्व आप ही है।

त्वमर्कस्त्वंसोम स्त्वंमसि पवनस्त्वंहुतवहः,
त्वमापस्त्वंव्योम त्वमुधरणिरात्मात्वमितिच।
परिछिन्नाम वें त्वयि परिणताविभ्रतिगिरम्,
नविद्मस्तत्तत्वंवयमिहतुयत्वन्नभवसि॥२६॥

तुही अग्नी वायु रवि शशि तुही नीर मय हो,
तुही पृथ्वी आत्मा सुर पुर तुहीदेव नय हो।
अहो श्रीमन्शम्भो पृथक कहते सेवक तुमे,
कहें, पर विनतेरे अलगनहिं है तत्व जगमें॥२६॥

हे भगवन! अग्नी, वायु, सूर्य्य, चन्द्र, जल, पृथ्वी, आत्मा, स्वर्ग देवनय (वेद) ये सब कुछ तुम्हीं हो। यद्यपि भक्तजन आपके इन

स्वरूपोंको भिन्न २ (अलग २) कहते हैं, परन्तु हे नाथ ! मैं आपसे अलग संसारमें कोई तत्व नहीं समझता ।

त्रयीं तिस्रोवृत्तिस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा,
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभि रधत्तीर्ण विकृतिः ।
तुरीयं तेधाम ध्वनिभिरवरून्धान मणु भिः,
समस्तं व्यस्तंत्वांशरणदगृणात्योमितिपदम् २७

श्रुती तीनों शम्भो, अ उ म यह श्रीब्रह्म पदभी,
अवस्था जाग्रतमें, विनय करते देवगण भी ।
वही ओंकारश्वर, ध्वनि मधुर से धाम चौथा,
बातता है तेरी, विमल मनसे निर्मल कथा॥२७॥

हे शरणद ! ऋग्, यजु, साम, ये तीनों वेद अ, उ, म, भी आप ही की स्तुति करते हैं । और वेदके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, आदि वृत्तियोंको धारण किये हुए हैं । यह ओंकार स्वर तुरीय अर्थात् चौथी अवस्था का बोध कराता है ।

भवः सर्वोरुद्रः पशुपति रथोग्रःसहमहां,
स्तथाभीमेशानावितियदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुस्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि,
प्रियायास्मैधाम्नेप्रणिहितनमस्योस्मिभवते२८

भवः सर्वः रुद्रः पशुपति तथा उग्र करके,
महादेवः भीमः कहत कोइ ईशान हरको ।
इसी नामाष्टकके प्रतिवरण में देव विहरैं,
उसी प्रिय धामा को नमन करताहूं सब करैं ॥२८॥

हे देव! यह नामाष्टक जिसमें आप के ८ आठ नाम हैं, जिस अष्टकके प्रतिअक्षरोंमें आपका वास है। ऐसे आपको वारम्बार नमस्कार करता हूं। और प्रार्थना है कि सब लोग नमस्कार करें।

ओं नमोनेदिष्ठायप्रियदव दविष्ठायचनमः,
नमःक्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठायचनमः ।
नमो वर्षिष्ठायत्रिनयन यविष्ठायचनमः,
नमः सर्वस्मैतेतदिदमितिसर्वायचनमः॥२९॥

निकट बासि नमो नेदिष्ठ को,
बसित दूर नमो दविष्ठ को ।
परम सूक्ष्म नमः क्षोदिष्ठ को,
स्मर हर प्रभु देव महिष्ठ को ॥

नमत नित्य जरा वर्षिष्ठ को,
युवक नाथ नमः सुयविष्ठ को ।
सर्व लोक त्रिलोक विशिष्ट को,
मनवचों से नमः शिवशिष्ट को ॥२९॥

वहुलरजसेविश्वोत्पत्तौ भवाय नमोनमः,
प्रवल तमसे तत्संहारे हराय नमोनमः ।
जनसुख कृते सत्वोद्दक्तौ मृड़ाय नमोनमः,
प्रमहसिपदेनिस्त्रैगुण्येशिवायनमोनमः॥३०॥

जग सृष्टि हेतु राजस गुण मय,
भव चरणों में है नमस्कार ।
उस जगविनास के हेतु त्रिगुण,
श्रीहर को पुनिपुनि नमस्कार ॥
जग सुखहित सद्गुण मय हरको,
हूं करता वन्दन वार वार ।
सत रज तम हूं से परे नाथ,
उस पदको पुनि पुनि नमस्कार ॥३०॥

क्कश परिणति चेतःक्लेश वश्यं क्वचेदं,
क्वच तव गुण सीमोल्लंघिनीशश्व दृद्धिः ।
इति चकितममन्दी कृत्य माँभक्तिराधात्,
वरद चरणयोस्ते वाक्य पुष्पोपहारम्॥३१॥

दुख युत मन मेरा मन्द वुद्धो कहां है,
तव विपुल असीमा नाथ ऋद्धी कहां है ।
चकित चित मैं तो भक्तिमें मोद पाता,
तव बरद चरणोंपै वाक्य पुष्पें चढ़ाता ॥३१॥

असितगिरि समंस्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे,
सुर तरुवर शाखा लेखनीपत्र मुर्वीम् ।
लिखति यदिगृहित्वा शारदा सर्व कालम्,
तदपि तव गुणना मिशपारन्न याति ॥३२॥

यदि असित गिरहुं घोला सिन्धुके नीर में हो,
सुर तरुवर शाखाकी बनी लेखनी हो ।
क्षिति पट पर वाणी आपही लिख रही हो,
तदपि तव गुणोंको अन्तही ना कहीं हो ॥३२॥

असुर सुर मुनिन्द्रै रर्चित स्येन्दु मौले,
ग्रंथित गुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्टः पुष्प दन्ताभिधानोः,
रुचिरमलघुबृत्तैः स्तोत्र मेतच्चकार॥३३॥

पूजित महिमाये, देवसे दानवौं से,
निशदिन अभिबन्दित, मानसेमानवोंसे ।
उस प्रभु जिसके है, मौलिमें चन्द्रमाला,
का, दशनकुसुमनेस्तव, दीर्घबृतमें निकाला॥३३॥

अहरह रनवद्यं धूर्जटे स्तोत्र मेतत्,
पठतिपरम भक्त्या शुद्धचित्तःपुमान्यः ।
सभवति शिवलोके रुद्र तुल्य स्तथात्र,
प्रचुरतरधनायुः पुत्रमान्किर्तिमांश्च॥३४॥

शुचिचित नितनित जो शम्भु सेवा करेगा,
धन बल उसकाही सर्वदाही बढ़ेगा ।
शुभ कीर्ति सुखोंको भोग के बाद भवको,
तरि, संग विहरेगा शम्भुके केलिशवके ॥३४॥

दीक्षादानंस्तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाःक्रियाः
महिम्नस्तव पाठस्य कलान्नार्हन्तिषोशीम् ।
महेशान्नापरो देवो महीम्नो नापरास्तुती,
अघोरान्नापरोमंत्रोनास्तितत्वंगुरोःपरम् ॥३५॥

दोहा-तीर्थ योग यप यज्ञ सब, दीक्षा दान अनेक ।
शिव महिम्नके पाठकी, तुलैन कणिका एक ॥
शिवमहिम्न सम पाठ नहिं, देवन शिवतेआन ।
नहिं अघोर सम मन्त्रकहुं, तत्वन गुरू समान ॥

कुशुमदशन नामा सर्व गन्धर्व राजः
शशिधर वर मौलेर्देव देवस्य दासः ।
सगुरू निजमहिम्नोभ्रष्ट एवास्यरोषात्,
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यंमहिम्नः ॥३६॥

पुष्पदन्त सुनाम था वह दास था श्री चन्द्रभालका,
वह कियाथा स्तुति मनोहर शापमोचन हेतु कालका ।
पति रहा गन्धर्वपुरका शाप था उसपै महेशका,
स्तोत्र की वरदान पाया फिर बना राजा स्वदेशका ॥

सुरवर मुनि पुज्यं स्वर्ग मोक्षैक हेतुम्,
पठतियदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्य चेता ।
सव्रजति शिव समीपं किन्नरैस्तूयमान,
स्तवनमिद ममोघं पुष्पदंत प्रणीतम् ॥३७॥

सुर वर मुनियोंके पूज्य मुक्ति प्रदाता,
ये स्तव जिसके हैं पुष्प दन्त प्रणेता ।
पढ़त नित नित जो साञ्जली शुद्ध चेता,
वह शिव ढिंग जाता किन्नरोंसे पुजाता ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्व भाषितं,
अनूपमं मनोहारि शिवमिश्वर वर्णनम् ।

असमाप्ति ये स्तोत्र, शुद्ध कथित गन्धर्वका ।
अनुपम मनहर चारु, प्रभुशिवको वर्णन यह ॥

श्रीपुष्पदन्त मुखपङ्कज निर्गतेन,
स्तोत्रेण किल्विष हेरण हर प्रियेण ।

कण्ठ स्थितेन पठितेन समाहितेन,
सुप्रीणितोभवतिभूत पतिर्महेशः॥३८॥

श्रीपुष्पदन्त मुखसे निकली सुवाणी,
शोका पहारिणी विदारिणि पापकी है।
कण्ठी किया हर प्रिया स्तुति या पढ़ाजो,
होके प्रशन्न उसको शिव मुक्ति दी है॥

इत्येषा वाङ्मयीपूजा श्रीमच्छंकर पादयोः,
अर्पिता तेनमेदेव प्रीयतां च सदा शिवः।

अर्चन वचन सरुप, श्रीशंकर के चरण में।
अर्पन करता, नाथ! हो प्रशान्न मुझ दीन पर॥